# भगवान मल्लिनाथ

बाहुबली प्रकाशन ग्रन्थमाला का पंचम पुष्प

# भगवान मल्लिनाथ


लेखक :

**ब्र. हरिलाल जैन**

अनुवादक :

**मगनलाल जैन**

सम्पादक :

**अखिल बंसल**



प्रकाशक :

**समन्वय वाणी जिनागम शोध संस्थान**

129, जादोन नगर 'बी', स्टेशन रोड़, दुर्गापुरा जयपुर

फोन : (0141) 2722274 मोबाईल : 09314515197

प्रथम संस्करण : 3000
( 4 जुलाई 2001 )
द्वितीय संस्करण : 1000
( 13 नवम्बर 2007 )
योग : 4000

मूल्य : 11 रुपया

प्राप्ति स्थान :
समन्वय वाणी फाउण्डेशन
129, जादोन नगर 'बी'
दुर्गापुरा, जयपुर – 302018

मुद्रक :
*प्रिन्टोमैटिक्स*
स्टेशन रोड़, दुर्गापुरा, जयपुर
फोन : 2722274, 9314515197

# प्रकाशकीय

समन्वय वाणी जिनागम शोध संस्थान के माध्यम से पंचम पुष्प के रूप में भगवान मल्लिनाथ का सम्पूर्ण चित्रमय कथानक प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

जैनधर्म के उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ के इस जीवन चरित्र का प्रकाशन विशेष रूप से बच्चों में धार्मिक रुचि पैदा करने के उद्देश्य से किया गया है ताकि उनका यह सचित्र जीवन चरित्र पढ़कर बाल वर्ग को हमारी संस्कृति व इतिहास की विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सके।

इस जीवन चरित्र का लेखन ब्र. हरिभाई ने गुजराती भाषा में किया था जिसका अनुवाद मगनलालजी द्वारा हिन्दी में किया गया है तथा सम्पादन का दायित्व श्री अखिल बंसल ने बखूबी सम्हाला है। मैं तीनों महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं।

आप सभी प्रस्तुत प्रकाशन के माध्यम से अपने आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें इसी भावना के साथ –

**बाहुबली जैन,** मथुरा
अध्यक्ष

**हे जिनवर ! तुम सत्य पुरुष हो पुरुषार्थी हो मोक्ष के।**
**साधक जीव तुमको सेत अर्थी हो निज आत्मा के।।**
**प्रभो ! आपका सेवक कभी न पर्याय स्त्री पर्याय को पाता।**
**भव- भ्रमण का अंत कराकर शीध्र मोक्ष पदवी पाता।।**

हे भगवान मल्लिनाथ ! आप परम पुरुष हैं। आपका यह पवित्र पुराण भक्तिपूर्वक जो भव्यजीव सुनेंगे उनको चैतन्य धर्म की आराधना जागृत होगी और संसार में स्त्री पर्याय का छेद हो जायेगा। अहा, चैतन्य परमपुरुष की प्रतीति करनेवाले धर्मी जीव को कभी स्त्रीवेद का बंधन नहीं होता, तब फिर अनेक पूर्वभवों में रत्नत्रयसहित चैतन्य की आराधना करनेवाले तीर्थंकर–महात्मा को स्त्रीपर्याय होने की बात कैसी ? अरे, तीर्थंकर जैसे महापुरुष को 'स्त्री' कहना – वह तो उनकी कैसी आसातना है ? सिद्धान्तानुसार द्रव्यस्त्रीवेद का उदय मात्र पाँचवें गुणस्थान तक और भावस्त्रीवेद का उदय नौंवे गुणस्थान

तक ही होता है, उससे ऊपर के गुणस्थानों में द्रव्य से पुरुषवेदीपना और भाव से अवेदीपना होता है।

हे प्रभो मल्लिनाथ जिनेश ! आपका पवित्र जीवन पूर्वभवों से ही रत्नत्रय द्वारा अलंकृत था, इसलिए स्त्रीवेद आदि अशुभ प्रकृतियाँ, जो कि मिथ्यादृष्टि जीवों को ही बँधती हैं, वे आपसे अत्यन्त दूर थीं; आपके आराधकजीवन की पहिचान और उसका चिन्तन करनेवाले जीव देव–गुरु सम्बन्धी मिथ्यात्व के शल्य को मल्ल की भाँति चूर–चूर कर देते हैं, सम्यक्त्व प्रकट करते हैं। आपको तो स्त्रीपर्याय नहीं थी, परन्तु जो स्त्री आपकी प्रतीति करे उसको भी भविष्य की स्त्री पर्याय का सर्वथा छेद हो जाता है।

हे परमपुरुष तीर्थंकर मल्लिनाथ ! आप तो हमारे इष्टदेव हैं; इसलिए जीवों को मिथ्याभावों से छुड़ाने वाला तथा रत्नत्रय की आराधना में लगाने वाला आपका सम्यक् जीवन यहाँ भक्तिपूर्वक कहता हूँ।

## भगवान मल्लिनाथ पूर्वभव : विदेह में वैश्रवण राजा

जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र में वीतशोका नाम की एक सुन्दर नगरी है। मोक्षाभिलाषी धर्मात्माओं से भरपूर उस नगरी में जिनमन्दिरों के उन्नत शिखरों पर लहराती हुई धर्मध्वजाएँ मानो देवों को पुकार रहीं हैं कि 'हे भाई देवो ! देवलोक में तुम्हें मोक्ष प्राप्त न होता हो तो वह प्राप्त करने के लिये यहाँ आओ ! इस नगरी में सदा केवली भगवन्त विचरते हैं और मोक्ष के द्वार सदा खुले हैं।'

तुम्हें प्रश्न होगा कि ऐसी सुन्दर नगरी का राजा कौन होगा ? सुन्दर नगरी का राजा भी सुन्दर ही होगा न ! तीर्थंकर मल्लिनाथ का आत्मा स्वयं पूर्वभव में इन मनोहर वीतशोका नगरी का राजा था। उनका नाम था वैश्रवण; वे आत्मज्ञानी थे और उनका चित्त रत्नत्रय की आराधना में लीन रहता था। एकबार वे राजसभा में बैठे थे; वहाँ उद्यान के माली ने आकर आनन्दपूर्वक बधाई दी कि 'हे स्वामी !

अपनी नगरी के चन्दनवन में आज सुगुप्ति नाम के महा मुनिराज पधारे हैं; जिसप्रकार साधक जीवों का हृदय रत्नत्रय खिल उठता है उसीप्रकार सारा उद्यान बिना मौसम के आम्र आदि सुन्दर फल–फूलों से खिल उठा है। यह सुनते ही राजा ने अत्यन्त हर्षविभोर होकर आनन्दभेरी बजवायी और नगरजनों सहित धूमधाम से मुनिराज की वन्दना करने आये।

श्री मुनिराज ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा– हे राजन् ! तुम्हें मोक्ष के कारणरूप रत्नत्रयधर्म की वृद्धि हो !

मुनिराज के आशीर्वाद से राजा प्रसन्न हुए और बोले – हे नाथ ! आपके श्रीमुख से रत्नत्रयधर्म का स्वरूप श्रवण करने की भावना है, कृपा करके रत्नत्रय का स्वरूप सुनाइये !

मुनिराज के श्रीमुख से मानो अमृत झरता हो ऐसी वाणी निकली। हे राजन् ! सुनो, अनेक प्रकार के दुःखों से भरे हुए इस संसार से छुड़ाकर जो अनन्तसुख के धाम – ऐसे मोक्ष की प्राप्ति कराये उसका नाम धर्म है। वह धर्म साक्षात् मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे त्रिरत्नस्वरूप है; उसे पहिचानकर उसकी आराधना करो।

राजा ने कहा–प्रभो ! उस रत्नत्रय धर्म में से प्रत्येक धर्म का स्वरूप सुनने की आकांक्षा है।

श्री मुनिराज ने कहा–सुनो ! रत्नत्रय में सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन है। सर्वज्ञ– वीतराग जिनवर देव, निर्मोही गुरु और जीव–अजीवादि सात तत्त्वों का स्वरूप बराबर जानकर, उनमें से सारभूत (भूतार्थ) अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति करना सो सम्यग्दर्शन है। 'शुद्धनय भूतार्थ है– अर्थात् शुद्धनय और उसके विषयरूप शुद्ध आत्मा, उन्हें अभेद करके 'भूतार्थ' कहा है और इस भूतार्थ का आश्रय करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि होता है। (भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइठ्ठी हवइ जीवो।) उस –

## सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं

(1) तलवार की तीक्ष्ण धार जैसा श्रेष्ठ जिनमार्ग, वह सन्मार्ग है; उसमें बिना किसी शंका के निश्चल रुचि करना, सो निःशंकित अंग है।

(2) धर्म के फल में संसारसुख की वांछा नहीं करना, किन्हीं भी विषयों में (पुण्यफल में) सुख नहीं मानना, सो निःकांक्षित अंग है।

(3) मलिन शरीरादि को देखकर धर्मात्मा के प्रति घृणा नहीं करना, किन्तु उसके गुणों में प्रीति करना, सो निर्विचिकित्सा अंग है।

(4) सुखकर ऐसा जिनमार्ग और दुःखकर ऐसे अन्य मिथ्यामार्ग – उनका स्वरूप जानना और मिथ्यामार्गों में किसीप्रकार सम्मति नहीं देना अथवा उनकी प्रशंसा नहीं करना, सो अमूढ़दृष्टि अंग है।

(5) साधर्मी के अवगुणों को ढूँकना, वीतरागभावरूप जिनधर्म की वृद्धि करना तथा धर्म की या धर्मात्मा की निन्दा के प्रसंग आने पर उन्हें योग्य उपायों द्वारा दूर करना, सो उपगूहन–अंग है।

(6) तीव्र दुःखादि किन्हीं भी कारणों से अपना या पर का आत्मा धर्म में शिथिल होने का प्रसंग आये, तो वैराग्य भावना द्वारा तथा जिनधर्म की महिमापूर्वक उसे धर्म में स्थिर करना, सो स्थितिकरण अंग है।

(7) अपने साधर्मी भाई–बहिनों के प्रति हृदय में उत्तम भाव रखकर उनका आदर–सत्कार करना, सो वात्सल्य अंग है। अपनी शक्ति द्वारा जैनधर्म की शोभा बढ़ाना, अज्ञान को दूर करके तथा सम्यग्ज्ञान की महिमा प्रकट करके जिन धर्म को दिखाना, सो प्रभावना अंग है।

(8) इसप्रकार मुनिराज ने आठ अंग सहित सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझाया। पश्चात् वैश्रवण राजा ने कहा–हे स्वामी ! सम्यग्दर्शन के आठ अंग और उनकी महिमा सुनकर अति प्रसन्नता हुई। अब कृपा करके सम्यग्ज्ञान का और उसके आठ अंगों का स्वरूप समझाइये।

## सम्यग्ज्ञान और उसके आठ अंग

श्री मुनिराज बोले– जिनमार्ग में देव–गुरु–शास्त्र तथा उनके कहे हुए जीवादि नवतत्त्वों का स्वरूप जानकर, परमाभावों से भिन्न तथा अपने निजभावों से परिपूर्ण ऐसे, अपने ज्ञानमय शुद्धात्मा की अनुभूति रूप ज्ञान सो सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्दर्शन के साथ ही ऐसा सम्यग्ज्ञान नियम से होता है। सम्यग्ज्ञान अष्ट प्रकार की विनय से सुशोभित होता है:–

(1) शब्द की शुद्धि (2) अर्थ की शुद्धि (3) शब्द तथा अर्थ दोनों की शुद्धि (4) योग्य काल में अध्ययन (5) उपधान अर्थात् किसी नियम–तपसहित अध्ययन (6) शास्त्र का विनयपूर्वक अध्ययन (7) गुरु के प्रति उपकार बुद्धि करना ज्ञानदाता गुरु के नाम आदि नहीं छिपाना सो अनिह्व और (8) स्तुति–पूजा, रथयात्रा आदि उत्सव तथा शास्त्रप्रचार द्वारा देव–गुरु–आगम की और जिनधर्म की कीर्ति प्रकट करना।

इसप्रकार अष्ट अंगसहित विनय–आचार सम्यग्ज्ञान शोभायमान होता है। सम्यग्ज्ञान अमृतसमान है, वही मोक्षमार्गी जीव की आँख है; सम्यग्ज्ञानचक्षु द्वारा सारा जगत दृष्टिगोचर होता है और वस्तुस्वरूप की प्रतीतिपूर्वक मोक्षमार्ग सधता है। उसकी नित्य आराधना करो।

राजा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा–हे प्रभो ! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक जिसका पालन आप जैसे वीतराग मुनिवर करते हैं – ऐसे सम्यक्चारित्र का स्वरूप कृपा करके कहिये।

## सम्यक्चारित्र का स्वरूप उसके तेरह प्रकार

चारित्रधारी मुनिराज ने सम्यक्चारित्र का स्वरूप बतलाते हुए कहा– 'हे राजन् ! सुनो, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक शुद्धोपयोग द्वारा आत्मस्वरूप में लीन होना–विचरना सो चारित्र है। उस चारित्र में राग नहीं है। मुनियों को ऐसे शुद्धभावरूप चारित्र के साथ हिंसादि समस्त पापों का अभाव तथा अहिंसादि महाव्रतों का पालन होता है; इसलिए व्यवहार से चारित्र के तेरह प्रकार हैं :–

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (यह पाँच महाव्रत); मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति (ये तीन गुप्ति) ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण तथा प्रतिष्ठापन (ये पाँच समिति)।

सर्वसंगपरित्यागी निर्ग्रन्थ मुनिवरों को रत्नत्रय की शुद्धपरिणति सहित ऐसे तेरह प्रकार के चारित्र का पालन होता है। यह सम्यक् चारित्र साक्षात् मोक्षसुख देनेवाला है; उसकी महिमा अपार है।

हे भव्य ! इसप्रकार सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र का स्वरूप बतलाया; उन तीनों को तुम रागरहित जानो।

**सरधो जानों भावा लाई, तीनों में ही रागा नाहीं !'**

हे मुमुक्ष जीवो ! रत्नत्रय की अचिंत्य महिमा जानकर उससे आत्मा को अलंकृत करो। सम्यग्दर्शनरूपी हार को गले से लगाओ, सम्यग्ज्ञान के कुण्डल कानों में पहिनो और सम्यक्चारित्ररूपी मुकुट को मस्तक पर धारण करो। सिद्धान्त का सर्वस्व यह रत्नत्रय है; यही जीव का सच्चा जीवनहै; उसमें निश्चय रत्नत्रय शुद्ध आत्मा के आश्रित होने से परम उत्तम है। ध्यानमार्ग द्वारा उसकी प्राप्ति होती है और वह मोक्ष का साक्षात् कारण है; इसलिए मुमुक्षु जीवों को अवश्य ही प्रयत्नपूर्वक उसका आराधन करना चाहिये।

## रत्नत्रयव्रत का निधान

रत्नत्रय की सुन्दर महिमा सुनकर भावी तीर्थंकर ऐसे उन वैश्रवण राजा ने कहा–हे स्वामी ! मेरी भावना ऐसे रत्नत्रय धारण

करने की है, परन्तु इस समय मैं असमर्थ हूँ, इस समय तो सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की आराधनापूर्वक चारित्र की भावना भाता हूँ। हे प्रभो ! उस रत्नत्रय के प्रति परमभक्ति एवं बहुमानपूर्वक ठाट–बाट से उसकी महापूजा करने की मेरी भावना है, इसलिए उस रत्नत्रय व्रत का विधान मुझे समझाइये। उसके द्वारा मैं रत्नत्रय की भक्ति करूँगा और भविष्य में उसकी साक्षात् आराधना करके

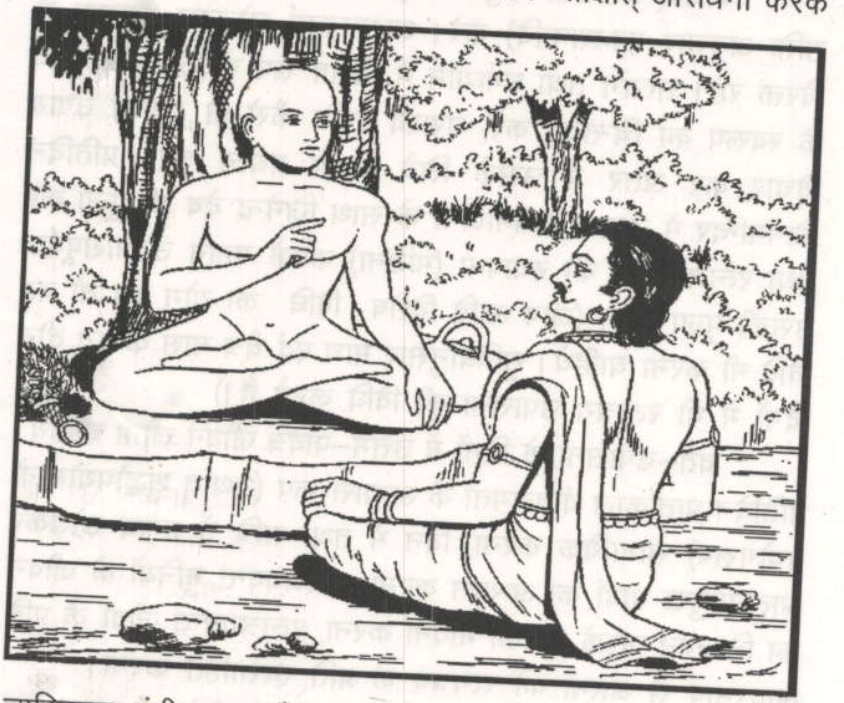

चारित्रपद अंगीकार करूँगा।

श्री मुनिराज ने कहा– हे राजा ! आप भव्य हो, आपकी भावना उत्तम है, आगामी मनुष्यभव में आप भरतक्षेत्र के तीर्थंकर होनेवाले हो। रत्नत्रय के प्रति आपकी भक्ति प्रशंसनीय है। उस रत्नत्रय का व्रत–विधान मैं संक्षेप में कहता हूँ,–सो सुनो :–

भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा – यह तीन दिन रत्नत्रय–विधान के उत्तम दिवस हैं। रत्नत्रयव्रत का

उपासक जीव श्रद्धा–भक्तिपूर्वक एक दिन पूर्व जिनमन्दिर में जाकर पूजन करे, श्रीगुरु के निकट जाकर आत्महितकारी शास्त्र श्रवण करे, मुनिराज का सुयोग प्राप्त हो जाये तो उन्हें तथा अन्य साधर्मी जनों को आदरसहित आहारदानादि करे और रत्नत्रय व्रत का संकल्प करके अत्यन्त आनन्दोल्लासपूर्वक उसका प्रारम्भ करे।

पश्चात् त्रयोदशी–चतुर्दशी–पूर्णिमा तीनों दिन उपवास (अथवा शक्ति अनुसार एकाशनादि) करे। आरम्भकार्य छोड़कर गृहवास से विरक्त रहे। सत्संग तथा धर्मध्यान में विशेष रूप से रहकर रत्नत्रय के स्वरूप का चिन्तवन करे, उसकी प्राप्ति कैसे हो उसका उपाय विचार कर अंतर में उसके लिये विशेष प्रयत्न करे। प्रतिदिन जिनमन्दिर में जाकर साधर्मीजनों के साथ जिनेन्द्र देव की पूजा करे तथा रत्नत्रय धर्म की स्थापना (मांडना) करके महान उल्लासपूर्वक उसकी पूजा करे। (जाप आदि विशेष विधि का योग बने तो वह विधि भी करना चाहिये। सुविधानुसार माघ एवं चैत्र मास के इन तीन दिनों में भी रत्नत्रय उपासना की विधि करते हैं।)

व्रत–उपासना के दिनों में उत्तम–पवित्र जीवन जीना चाहिये। प्रतिदिन प्रातःकाल वीतरागता के अभ्यास रूप (अर्थात् शुद्धोपयोग के प्रयोगरूप) सामायिक करना, दिन में तथा रात्रि में प्रमाद छोड़कर आत्मसन्मुख भावों का अभ्यास करना, रत्नत्रयवन्त मुनियों के जीवन का चिन्तवन करके उसकी भावना करना, रत्नत्रयवन्त जीवों के प्रति आदरभाव से आत्मा को रत्नत्रय के प्रति उत्साहित करना।

इसप्रकार शुद्धरत्नत्रय के प्रति तीव्रभक्ति एवं प्रेम के गद्गदभाव से अत्यन्त उल्लासपूर्वक तीन दिन तक पूजनादि करके, चौथे दिन उसकी पूर्णता के निमित्त से महान उत्साहपूर्वक जिनेन्द्र देव का अभिषेक करना। पूजन, शास्त्र–श्रवण, धर्मात्माओं का सम्मान, आहारदानादि करके फिर प्रसन्नचित्त से स्वयं पारणा करना और इस अवसर पर दानादि द्वारा धर्मप्रभावना करना।

इसप्रकार तीन वर्ष तक (अथवा भावनानुसार पाँच या तेरह

वर्ष तक) रत्नत्रय व्रत करके पश्चात् देव–गुरु–धर्म के महान उत्सव–भक्तिपूर्वक उसका उद्यापन करना। तन–मन–धन से शास्त्र से अनेक प्रकार उल्लासपूर्वक रत्नत्रय धर्म का उद्योत हो तथा सर्वत्र उसकी महिमा फैले इसप्रकार प्रभावना करना। जिनमन्दिर में तीन छत्र, तीन कलश, तीन शास्त्रादि अनेक प्रकार की तीन–तीन वस्तुओं का दान करना; प्रीतिभोज आदि के द्वारा साधर्मियों का सम्मान करना। हे राजन् ! इसप्रकार रत्नत्रयव्रत का विधान जानो।

श्री मुनिराज के मुख से रत्नत्रयव्रत का विधान सुनकर वैश्रवण राजा ने अत्यन्त हर्षपूर्वक वह व्रत धारण किया और महान

उत्सव सहित उसका उद्यापन करके जैनधर्म की प्रभावना की।

इसप्रकार धर्म का आचरण करते–करते एक दिन राजा वैश्रवण वनविहार करने गये। प्रातःकाल जाते समय मार्ग में एक सुन्दर विशाल वटवृक्ष देखकर उन्हें विचार आया कि वाह, यह कितना विशाल वटवृक्ष है ! मेरा राज्य भी इस वटवृक्ष जैसा विशाल एवं सुन्दर है, परन्तु सायंकाल वनविहार करके लौटते समय उन्होंने देखा तो वह सुन्दर वटवृक्ष बिजली गिरने से जलकर भस्मीभूत हो गया था –ऐसी क्षणभंगुरता देखकर राजा का चित्त एकदम संसार से

विरक्त हो गया। अरे, मेरा यह राज्य और शरीर–भोग भी इस वटवृक्ष की भाँति क्षणभंगुर है–ऐसा विचारकर उत्तम बारह वैरागय भावना पूर्वक, संसार भोगों से उदास होकर तथा शरीर का भी ममत्व छोड़कर, श्रीनाग नामक मुनिराज के पास जाकर उन्होंने जिनेश्वरी दीक्षा अंगीकार की और आत्मध्यान में शुद्धोपयोग द्वारा सम्यक्रत्नत्रय दशा प्रकट की।

रत्नत्रयधारी उन वैश्रवण मुनिराज ने दर्शनविशुद्धि आदि षोडशकारण भावनाओं द्वारा तीर्थंकर नामकर्म बाँधा, बारह अंग के ज्ञान द्वारा वे श्रुतकेवली हुए; पश्चात् चार आराधना सहित समाधि मरण किया।

## भगवान मल्लिनाथ : अपराजित विमान में

भावी तीर्थंकर ऐसे वैश्रवण मुनिराज समाधिमरण करके अपराजित विमान में अहमिन्द्रदेव हुए। वहाँ रत्नमयी शैय्या में उत्पन्न होने पर कुछ ही समय पश्चात् वे देवी अति उत्तम वस्त्रालंकारों से सम्पूर्ण सुसज्जित यौवनावस्था को प्राप्त हुए। स्वर्गलोक की अद्भुत्–आश्चर्यजनक ऋद्धियाँ देखकर क्षणभर तो वे स्तब्ध रह गये कि अरे, यह सब क्या है ! उसीसमय उनको अवधिज्ञान प्रकट हुआ और उन्होंने जान लिया कि–'पूर्वभव में मैंने जैनधर्म के रत्नत्रय का उत्तम प्रकार से पालन किया था तथा उत्तम तप किया था, उसी के पुण्य बंध का यह फल है।' अहो, धर्म की महिमा का क्या कहना ! आत्मा की अनुभूति में जो कल्पनातीत आनन्द है, उसकी तुलना इस स्वर्गलोक की विभूति से नहीं हो सकती। चैतन्यविभूति की महिमा का चिन्तवन करते ही उनका स्वर्गलोक की विभूति सम्बन्धी विस्मय शांत हो गया। सर्वप्रथम वे उस देवविमान के शाश्वत जिनमन्दिर में गये और भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र–पूजा की। उस स्वर्गलोक में समस्त देव सम्यग्दृष्टि थे और अधिकांश तो एकावतारी थे। समस्त आत्मानुभवी धर्मात्माओं का जीवन विषय–वासना रहित, संसार से विरक्त तथा अन्यत्र उपशांत था। वे स्वानुभवपूर्वक जानते थे कि सच्चा सुख

आत्मा स्वयं ही है। जिसप्रकार ज्ञान वह आत्मा ही है, आत्मा से भिन्न नहीं है, उसीप्रकार सुख भी आत्मा ही है, आत्मा से भिन्न अन्यत्र कहीं सुख नहीं है। ऐसा जानने के कारण वे महात्मा स्वर्गलोक की दिव्यविभूति के बीच असंख्यात वर्षों तक रहने पर भी उसमें मूर्च्छित नहीं हुए थे, अपनी चेतना को उससे अलिप्त ही रखते थे। पर से विभक्त एवं आत्मा से एकत्वरूप परिणमन द्वारा उनकी मोक्षसाधना चल रही थी। अपराजित विमान में दूसरे अहमिन्द्रों के साथ वे कैसी सुन्दर धार्मिक एवं आध्यात्मिक चर्चा करते थे, उसका थोड़ा रसास्वादन जिज्ञासु पाठकों को कराता हूँ।

**{अपराजित विमान में अहमिन्द्रों की अद्‌भुत चर्चा}**

एकबार तीर्थंकर भगवान के केवलज्ञान–कल्याणक का प्रसंग बना। अहमिन्द्रों को भी खबर पड़ी कि मनुष्यलोक में किन्हीं तीर्थंकर को केवलज्ञान हुआ है। उन्होंने वहाँ बैठे–बैठे अवधिज्ञान द्वारा वह दृश्य प्रत्यक्ष देखा। यद्यपि स्वर्गलोक के जीवन में उन्होंने तीर्थंकरों के कल्याणक असंख्यात बार देखे थे, परन्तु जब भी देखते तब उनके अंतर में उस परमात्मपद की अचिन्त्य महिमा की भावनायें जागृत होती थी। तीर्थंकर के केवलज्ञान का प्रसंग बनते ही अहमिन्द्र मिलकर आनन्दसहित चर्चा करने लगे :–

**एक** अहा, इस समय मनुष्य लोक में किन्हीं मुनिराज को केवलज्ञान हुआ है, वे परमात्मा हो गये। यद्यपि मनुष्य लोक में प्रत्येक छह महीने में 608 जीव केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

**दूसरे :** वाह, केवलज्ञान की महिमा अद्‌भुत–अचिन्त्य है; उस पद में चैतन्य के सर्वनिधान खुल जाते हैं !

**तीसरे :** अहा, अब हमें यहाँ से मनुष्यलोक में जाकर ऐसे केवलज्ञान की साधना करना है, केवलज्ञान अब अपने लिये दूर नहीं है; दिन–प्रतिदिन निकट ही आता जा रहा है।

**चौथे :** वास्तव में केवलज्ञान सर्वोत्कृष्ट मांगलिक है।

**पाँचवें :** और हम सबका आत्मा भी उस केवलज्ञान के साथ सम्बन्धित है, इसलिए हम सब भी मंगलरूप हैं।'

**छठवें :** आपकी बात सच है! वास्तव में आत्मा का चेतन–स्वभाव त्रिकाल मंगलरूप है, वही केवलज्ञान रूप परिणमता है।

**सातवें :** अहा यह एक अद्भुत बात है। आत्मा त्रिकाल मंगल और उसे स्वीकार करने वाला सम्यक्त्वादि भाव भी मंगल; इसप्रकार आत्मा द्रव्य–पर्याय दोनों से मंगल रूप है।

**आठवें :** अहा, आत्मस्वभाव के सन्मुख होकर उसमें तन्मयरूप से परिणमित जो भी भाव हैं वे सब मंगलरूप हैं।

**नौवें :** ऐसे भावरूप परिणमित आत्मा सर्वत्र सुन्दर है। यहाँ सम्यक्त्वरूप हुए हम अहमिन्द्र अथवा सातवें नरक में सम्यक्त्वरूप परिणमित जीव, वे सब मंगल हैं, श्रेष्ठ हैं।

**दसवें:** ठीक है, स्वभाव में एकत्वरूप तथा विभावों से विभक्तरूप ऐसे एकत्व–विभक्तरूप हुए आत्मा जगत में सर्वत्र शोभायमान होते हैं। {अहमिन्द्रों में होने वाली यह अद्भुत तत्त्वचर्चा हम पढ़ रहे हैं। सर्व अहमिन्द्र श्रुतज्ञान में पारंगत हैं, स्वानुभव में कुशल हैं तथा वैराग्यरस में निमग्न हैं, इसलिये उनकी चर्चा भी त्रुटिरहित और शान्तरस से भरपूर है। सभी समान विचार वाले हैं और एक–दूसरे के ज्ञान–वैराग्य की पुष्टि करनेवाले हैं। चर्चा करनेवाले उन अहमिन्द्रों में से अनेक जीव तो वहाँ से सीधे तीर्थंकररूप से अवतरित होने वाले हैं; जिनमें अपने चरित्रनायक मल्लिनाथ भगवान भी हैं। वे सब तो आनन्दकारी चर्चा असंख्यात वर्षों तक करते हैं– यह उसके एक अंश का आस्वादन है।}

**ग्यारहवें :** अपना जीवन इस स्वर्गलोक में यद्यपि सम्यक्त्वादि के

कारण मंगलरूप है, परन्तु केवलज्ञानरूप पूर्ण मंगल हमें यहाँ प्राप्त नहीं होता।

**बारहवें :** हम इस एक देवपर्याय में असंख्यात तीर्थंकरों के पंच कल्याणक अवधिज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष देखते हैं और उनमें भी दीक्षाकल्याणक तथा केवलज्ञान देखकर हम जिनदीक्षा और केवलज्ञान की भावना भी भाते हैं; परन्तु हम संयम धारण नहीं कर पाते।

**तेरहवें :** तथापि जिसमें से केवलज्ञान प्रकट होना है – ऐसे चैतन्यस्वभाव की अगाध–गम्भीर महिमा हम स्वानुभव से साक्षात् जानते हैं। अहा, उस गहरे–गहरे आत्मस्वभाव में कैसी अद्भुतता है !

**चौदहवें :** वाह, उस स्वभाव की साधना तो हम कर ही रहे हैं; हमारा आत्मा चारित्र तथा केवलज्ञान के सन्मुख ही जा रहा है। हम सब पूर्वभव में मुनि थे और चारित्रदशा का रसास्वादन हमने किया है।

**पन्द्रहवें :** हाँ, और अब आगामी भव में भी चारित्रदशा प्रगट करके मुनि होंगे तथा केवलज्ञान प्राप्त करेंगे।

**सोलहवें :** अरे, रत्नत्रय की वीतरागी दशा जैसा सुख तो अहमिन्द्रपद में भी नहीं है। आत्मसाधना अपूर्ण रही और रागभाव शेष रह गया, इसलिए यह अवतार हुआ है।

**सत्रहवें :** यहाँ असंख्यात वर्षों तक हम सब इन धर्मात्माओं के मेले में अहमिन्द्ररूप से साथ रहे; सचमुच धर्मात्माओं को देखकर हृदय में प्रेम एवं प्रसन्नता उमड़ती है !

**अठारहवें :** सच है, और यहाँ तो अपने साथी अहमिन्द्रों में से कुछ तो तीर्थंकर होने वाले हैं। देखो, यह जो पास बैठे हैं, यह पूर्वभव में वैश्रवण मुनि थे और कुछ वर्षों पश्चात् भरतक्षेत्र में मल्लिनाथ तीर्थंकर होंगे। (सर्व अहमिन्द्रों ने प्रसन्नतापूर्वक उन भावी तीर्थंकर की ओर देखा।)

**उन्नीसवें :** अहमिन्द्र बोले – अहा, रत्नत्रय के साधक हम सब संसार समुद्र के किनारे पहुँच गये हैं। हमारा आत्मा का रत्नत्रय ही हमारा तारणहार है भले उनके साथ तीर्थंकरत्व हो या न हो; तीर्थंकरत्व तो कर्म के उदय का कार्य है; रत्नत्रय तो अपना आत्मिकभाव है, उसमें हम सब समान हैं।

**बीसवें :** यथार्थ है प्रभो ! (सर्व अहमिन्द्र परस्पर प्रभु कहकर सम्मानपूर्वक सम्बोधन करते हैं–प्रभो !) तीर्थंकरत्व यद्यपि कर्मोदयजनित है, तथापि वह उदय नियम से केवलज्ञान के साथ ही होता है। इसप्रकार महामंगल रूप केवलज्ञान–परमात्मपद का सहकारी होने से वह तीर्थंकरत्व भी मंगल है तथा जगत के जीवों को भी वे सम्यक्त्वादि मंगल का कारण होते हैं। वास्तव में तीर्थंकर अपने परमात्मपद को साधकर जगत को भी परमात्मपद का उपाय बतलाते हैं।

भरतक्षेत्र में एक हजार करोड़ वर्ष तक कोई तीर्थंकर नहीं है। अब वहाँ उन्नीसवें तीर्थंकर का अवतार होने की तैयारी है। अपने यह उन्नीसवें अहमिन्द्र छह महिने पश्चात् यहाँ से भरतक्षेत्र में उन्नीसवें तीर्थंकर के रूप में अवतरित होंगे और यह जो दूसरे अहमिन्द्र विराजते हैं वे भी भरतक्षेत्र में इक्कीसवें नमिनाथ तीर्थंकर होंगे। इस चर्चा से अहमिन्द्रों में पुनः प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

इसप्रकार लाखों–करोड़ों अहमिन्द्र–धर्मात्मा चर्चा में भाग लेते और सबके अंतर में से केवलज्ञान की परम महिमा प्रकट होती थी। इसप्रकार ज्ञायकस्वभाव की महिमा का मंथन करते–करते अनेक अहमिन्द्र तो पुनः–पुनः निर्विकल्प स्वानुभूति कर लेते थे। यद्यपि उनके गुणस्थान–परिवर्तन नहीं होता था, तथापि स्वानुभूति की विशुद्धि वृद्धिंगत होती थी।

इसप्रकार परम चैतन्य महिमा से भरपूर धर्मचर्चा करते–करते

वर्षों के वर्ष कहाँ बीत जाते – उसकी खबर नहीं पड़ती थी। क्षेत्र से तथा भाव से मोक्षनगरी के निकट ही स्थित वे मोक्षसाधक महात्मा लगभग सिद्ध समान सुखी जीवन जीते थे; इसलिए असंख्यात वर्षों तक वहाँ रहने में उन्हें अरुचि, थकान या बेचैनी नहीं होती थी।

वे अहमिन्द्र जानते थे कि इस स्वर्गलोक में सम्यक्त्वसहित तथा धर्मभावनापूर्वक असंख्यात वर्ष रहने पर भी चारित्ररूप मुनिदशा के बिना यहाँ से मोक्ष साधना नहीं हो सकेगी; मोक्ष की साधना तो मनुष्यलोक में ही होगी इसलिए चारित्रपूर्वक मोक्ष साधना की भावना से वे महात्मा स्वर्गलोक से विमुख और मनुष्यलोक के सन्मुख रहने लगे।

अभी उनको मनुष्यलोक में आने में छहमास शेष थे, परन्तु तीर्थंकर प्रकृति के प्रभाव से मनुष्य लोक में कैसे–कैसे आश्चर्य एवं चमत्कार होने लगे। वह देखने के लिये हम मिथिलापुरी चलेंगे।

**{यहाँ भगवान मल्लिनाथ के पूर्वभव का वर्णन पूरा हुआ।}**

## भगवान मल्लिनाथ : पंचकल्याणक

**मल्लिनाथ को मैं नमूँ हे ब्रह्मचारी भगवान।**
**बिनबूँ प्रभुजी दो मुझे रत्नत्रय गुणखान।।**

भरतक्षेत्र में तीर्थंकरों की विहारभूमि के रूप में प्रसिद्ध ऐसे बिहार देश के निकट बंगभूमि है। उसके मध्यभाग में अत्यन्त शोभायमान मिथिलानगरी थी। जैनधर्म के परम उपासक महाराजा 'कुंभ' वहाँ राज्य करते थे। वे वास्तव में सम्यक्त्वादि गुणों से भरपूर कुंभ थे; उनकी पटरानी का नाम 'प्रजावती' था। धार्मिक समृद्धि से सुशोभित उस मिथिलानगरी में एकबार महान पुण्योदय होने से अचानक चमत्कार हुआ। राजभवन के प्रांगण में बहुमूल्य करोड़ों रत्नों की वर्षा होने लगी; उन रत्नों का दिव्य प्रकाश मिथ्यात्व–अंधकार के नाश की सूचना दे रहा था। उसीसमय आकाश मार्ग से कुछ देवांगनायें मिथिलापुरी में आयीं और महारानी प्रजावती की

स्तुति करके कहने लगीं– हे माता ! छहमास पश्चात् अपराजित स्वर्गलोक से उन्नीसवें तीर्थंकर का जीव आपकी कुक्षि में अवतरित होनेवाला है; उसके महान पुण्यातिशय से आकर्षित होकर हम आपकी सेवा करने आये हैं ! जगत की माताओं में आप सर्वश्रेष्ठ एवं भाग्यवान हैं कि तीर्थंकर समान त्रिलोकपूज्य पुत्र को आप जन्म देंगी !'

यह शुभ समाचार सुनकर तथा नये–नये दृश्य देखकर महारानी प्रजावती की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। सारी मिथिलानगरी में भी चारों ओर आनन्द छा गया। भगवान ऋषभदेव–अवतार के समय अयोध्यानगरी जैसी शोभायमान हो उठी थी वैसी ही मिथिलानगरी भगवान मल्लिनाथ–अवतार के समय सुशोभित हो उठी। अहा, स्वर्ग के देव स्वयं जिसका श्रृंगार कर रहे हों, और जिस नगरी में स्वयं तीर्थंकर अनेक वर्षों तक निवास करनेवाले हों उसके गौरव और शोभा का क्या कहना !

महाराजा कुम्भ और महानारी प्रजावती के जीवन में भी विशिष्ट परिवर्तन होने लगा; उनके विचार महान होने लगे, परिणामों में विशुद्धता आने लगी। महादेवी प्रजावती ने चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के

दिन तीर्थंकर के जन्मसूचक दैवी ऐरावत हाथी आदि अतिमंगलमय सोलह स्वप्न देखे और ठीक उसीसमय अपने चरित्रनायक भगवान मल्लिनाथ के जीव ने अपराजित विमान से चयकर महारानी के गर्भ में प्रवेश किया। जगत के लिये वह एक महामांगलीक क्षण था। इन्द्रादि देव मिथिलापुरी में आये और माता–पिता का सम्मान करके अपना हर्ष व्यक्त किया। उदर में विद्यमान प्रजावती को धर्म के उत्तम मनोरथ जागृत होने लगे। देवकुमारियाँ उनका मनोरंजन करती थीं और माताजी भी विभिन्न प्रकार की आश्चर्यजनक बातों से उन देवियों को मुग्ध करती थीं। माताजी की बातें सुनकर ऐसा लगता था, मानो उनके उदर में विद्यमान तीर्थंकर ही बोल रहे हों ! जिससे वे

देवकुमारियाँ भी अति आनन्दित होती थीं।

एकबार एक देवी ने माताजी से पूछा– हे माता ! इस संसार में स्त्रीपर्याय निंद्य मानी जाती है, तथापि उन स्त्रियों में महान सौभाग्यशाली कौन होता है ?

माताजी ने उत्तर दिया– तीर्थंकर की जननी परम सौभाग्यशाली है; तथा स्त्री पर्याय में भी जो सम्यग्दर्शनादि प्रकट करे, उसका

अवतार धन्य है ! और तुम देवियाँ भी परम भाग्यशाली हो कि तीर्थंकर के सान्निध्य में रहकर उनकी सेवा करने का परम सौभाग्य तुम्हें प्राप्त हुआ है।–यह सर्व स्त्रियाँ निकट मोक्षगामी हैं; तथा वह इन्द्राणी भी महाभाग्यशाली है कि तीर्थंकर का जन्म होते ही उन्हें सर्वप्रथम गोद में लेने का सुअवसर उसे प्राप्त होता है और वह भी एक भवावतारी होती है। अहा, तीर्थंकर होनेवाले आत्मा की महिमा कोई अचिन्त्य है !

- **एक देवी ने पूछा-हे माता ! मुमुक्षु जीवों को पीने योग्य अमृत कौन सा है ?** माताजी मुस्कराते हुए बोली – 'मेरे पुत्र की वाणी'।
- **हे माता सर्वश्रेष्ठ कार्य कौन-सा है ?** 'आत्मा की अनुभूति'।
- **जगत में मूर्ख कौन है ?** जो तीर्थंकर के मार्ग में न चले वह !
- **जगत में सचमुच कौन बुद्धिमान है ?** तीर्थंकर का मार्ग प्राप्त करके जो आत्महित साधे वह।
- **हे माता ! जगत में कौन सच्चा वैभव सम्पन्न है ?** जिसके पास रत्नत्रयरूपी धन है वह सच्चा वैभवसम्पन्न है ?
- **जगत में निर्धन-भिखारी कौन है ?** जो धर्म को भूलकर विषयों में आसक्त है, वह।
- **जगत में महान पुण्य कौन-सा है ?** तीर्थंकर परमात्मा के साक्षात् दर्शन हों, वह।
- **हे माता ! इन्द्र भी किसका सेवक है ?** 'मेरे पुत्र का !' (तीर्थंकर जिनदेव का इन्द्र सेवक है।)

ऐसे अनेक प्रकार से वे तीर्थंकर की महिमा कर–करके अपनी धर्मभावना को पुष्ट करती थीं। एक आश्चर्य की बात यह थी कि गर्भस्थ शिशु की वृद्धि हो रही थी किन्तु माता का उदर नहीं बढ़ता था। माता–पुत्र दोनों के दिन सुखमय व्यतीत हो रहे थे।

मार्गशीष शुक्ला एकादशी का दिन है; स्वर्गलोक में इन्द्रसभा

हो रही है; अनेक प्रकार से संगीत–नृत्य द्वारा तथा जिनशासन की महिमा की चर्चा से सर्वत्र आनन्द छा रहा है; इतने में अचानक समस्त स्वर्गलोक द्रव्य घण्टानाद से झनझना उठा, इन्द्रासन भी डोलने लगा। सब आश्चर्य में पड़ गये कि अरे, यह क्या ! इन्द्र ने आश्चर्यचकित होकर अवधिज्ञान का प्रयोग करके जान लिया – "अहा ! भरतक्षेत्र की मिथिलापुरी' में तीर्थंकर का अवतार हुआ है, आनन्द.....महा आनन्द ! चलो देवो, प्रभु का जन्म–महोत्सव मनाने मिथिलापुरी में चलें।

माता प्रजावती ने तीर्थंकर पुत्र को जन्म दिया। सारी नगरी दिव्यप्रकाश से जगमगा उठी। नगरजनों का आनन्द का सागर उमड़ पड़ा ! आकाश में दैवी वाद्य बजने लगे, रत्नवृष्टि होने लगी और देवों के विशाल समूह सहित इन्द्र–इन्द्राणी जयजयकार करते हुए मिथिलापुरी

में उतरे। उस समय इतने देवों का दैवी ठाटबाट देखकर आश्चर्य होता था कि–अरे, यह मिथिलापुरी है या अमरापुरी ! एक देव ने स्वयं ऐरावत हाथी का रूप धारण किया था, उसकी शोभा अद्‌भुत–चमत्कारिक थी !

ऐरावत पर आकर इन्द्र महाराज ने मिथिलापुरी नगरी की तीन प्रदक्षिणायें करके उसका सम्मान किया। फिर इन्द्राणी राजभवन में जाकर बालतीर्थंकर को गोद में लेकर आ गई। अहा, देवी पर्याय में इन्द्राणी को यद्यपि पुत्र नहीं होता, परन्तु तीर्थंकर समान पुत्र को अपनी गोद में लेते हुए उसके आनन्द का पार नहीं रहा। तीर्थंकर के स्पर्श से उसका आत्मा किसी कल्पनातीत अनुपमसुख का वेदन कर रहा था और स्पर्श से भी परे आत्मा के अतीन्द्रिय स्वभाव की महिमा का चिन्तवन करके उस देवी ने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। उन बालतीर्थंकर को ऐरावत पर विराजमान कर इन्द्र को सौंपते हुए इन्द्राणी बोली–अहा देव ! आज मेरा जीवन धन्य हो गया, तीर्थंकर को गोद में लेकर उनके सीधे स्पर्श से मैं मोक्षगामी हो गई ! माताजी के निकट उनकी सेवा में रहने वाली छप्पन कुमारी देवियों के आनन्द का तो आज पार नहीं था। उन्हें विचार आ रहा था कि इन्द्राणी तो जन्मकल्याणक मना कर आज ही स्वर्ग में चली जायेंगी, जबकि हम तो वर्षों तक बालतीर्थंकर के साथ रहेंगे और उन्हें प्रतिदिन गोद में लेकर खिलायेंगे।

मेरुपर्वत पर ले जाकर इन्द्र ने तीर्थंकर के जन्माभिषेक का अति भव्य महोत्सव किया। मेरु पर ध्यान करनेवाले मुनिवर भी वह देखकर जिनेन्द्र महिमा में लीन हो गये। विद्याधर भी आश्चर्यचकित एवं मुग्ध होकर तीर्थंकर–महिमा देख रहे थे। अरे, स्वयं इन्द्र–इन्द्राणी भी जिन्हें देखकर आनन्द से नाच उठें– उन तीर्थंकर की महिमा का क्या कहना ! और अभी जब बाल–तीर्थंकर (द्रव्य–तीर्थंकर) की इतनी महिमा है तो केवलज्ञान को प्राप्त साक्षात् भाव–तीर्थंकर की महिमा का तो कहना ही क्या ? जन्माभिषेक में एक विशेषता थी–सामान्यतः तो स्नान किये हुए मनुष्य शरीर से स्पर्शित जल अपवित्र हो जाता है जबकि भगवान के दिव्य शरीर का स्पर्श करके वह जल तो ऐसा पवित्र एवं सुगन्धयुक्त हो गया था कि देवों ने भी उस गन्धोदक को मस्तक पर चढ़ाया। प्रभु का जन्माभिषेक करने के

पश्चात् इन्द्र ने जगत को आश्चर्यचकित कर देने वाला ताण्डव नृत्य किया, और इन्द्राणी ने स्वर्ग से लाये हुए सर्वोत्तम वस्त्राभूषणों द्वारा भगवान का श्रृंगार किया, मंगल तिलक किया। भगवान के चरण में कुम्भ (कलश) का मंगल–चिन्ह था, जो ऐसा सूचित करता था कि यह भगवान 'अमृत के कुंभ' हैं, धर्मरूपी अमृत के घट उनके अंतर में भरे हैं। इन्द्र ने 'मल्लिकुमार' सम्बोधनपूर्वक १००८ उत्तम गुणों द्वारा प्रभु की महान स्तुति की– अहो देव मल्लिनाथ ! आप परम पुरुष हो, कामशत्रु को जीतने के लिये आप मल्ल हो; मोक्ष पुरुषार्थ के आप नायक हो। हे देव ! आपकी स्तुति करके हम किसी सांसारिक विभूति की याचना नहीं करते, हम तो रागरहित परमात्पपद की अभिलाषा करते हैं। आप जैसी चैतन्यविभूति प्राप्त करने के लिये हम आपका सेवन करते हैं।

इसप्रकार विदेहक्षेत्र के मध्यस्थित मेरुपर्वत पर जाकर वहाँ सिद्धशिला के समान सुशोभित पाण्डुकशिला पर मल्लिकुमार प्रभु का जन्माभिषेक करने के पश्चात् वह बालप्रभु की शोभायात्रा सहित इन्द्रसेना भरतक्षेत्र में आयी और मिथिलापुरी के राजभवन में आनन्दमय नृत्य–नाट्य द्वारा पुनः भव्य महोत्सव किया। पिता महाराजा कुम्भ एवं माता महादेवी प्रजावती का भी सम्मान किया। अहा उस समय राजभवन की शोभा अनुपम थी ! जिसमें तीर्थंकर स्वयं निवास करते हों–उसकी महिमा का क्या कहना ! देखो न, मुमुक्षु के अंतर में परमात्मा विराजते हैं, इसलिये उसकी अद्भुत शोभा पर मुक्तिसुन्दरी भी मुग्ध हो जाती है ! मिथिला के प्रजाजन आज अपने को स्वर्ग के देवों से भी गौरवशाली मान रहे थे, क्योंकि स्वर्गलोक का राजा इन्द्र उनकी नगरी में आकर नृत्य कर रहा था ! ऐसी अपूर्व जिनमहिमा देखकर अनेक जीव तो जैनधर्म की श्रद्धा से सम्यग्दृष्टि हो गये थे।

प्रभु के जन्मोत्सव के हर्षोपलक्ष्य में महाराजा कुम्भ की ओर से याचकों को इच्छानुसार दान दिया जा रहा था; परन्तु प्रजाजन इतने तृप्त थे कि 'किमिच्छक' दान लेने वालों की भीड़ नहीं थी। पुत्र

जन्म के हर्ष में अपराधी जनों को भी कारागृह से मुक्त कर दिया गया और उन अपराधियों ने भी जिनेन्द्र महिमा जानकर अपने हृदय परिवर्तन द्वारा पाप प्रवृत्ति छोड़कर सदाचार युक्त धार्मिक जीवन अंगीकार किया। गली–गली में चौक पूरे जा रहे थे। 'अहा, अपनी नगरी में होनहार भगवान का जन्म हुआ है।' यह एक ही बात स्त्री–पुरुष एवं बाल–वृद्धों की चर्चा का विषय थी। लोगों के झुण्ड के झुण्ड राजभवन के प्रांगण में जाते और बालप्रभु का दिव्य तेज देखकर हर्षविभोर होकर लौटते थे। 'अहा, हमने भगवान के साक्षात् दर्शन किये'–ऐसी तृप्ति का अनुभव करते और जीवन को धन्य मानते। यद्यपि अनेक लोग तो प्रभु के शरीर की ही दिव्यता देखकर मोहित होते थे; शरीर से भिन्न उनके सम्यक्त्वादि आत्मगुणों की सुन्दरता का अनुभव तो कोई भेद–विज्ञानी ही करते थे और जो आत्मिक सौन्दर्य के दर्शन करते वे अपने में भी सम्यक्त्वादि भावों द्वारा अपने आत्मा की शोभा का अनुभव करते थे। क्योंकि –

**चेतनमयी शुद्ध भाव से जो जानता अरहन्त को।**
**सम्यक्त्व ले आनन्द से वह जानता निज आत्म को।।**

अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ के पश्चात् एक हजार करोड़ वर्ष बीतने पर उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ हुए, उनका बचपन अनोखा था। उनके साथ देव क्रीड़ा करने आते थे; कोई हाथी के बच्चे का रूप धारण करके नन्हें–से प्रभु को सूँढ पर बैठाकर झुलाते और पीठ पर सवारी कराते थे; कोई बन्दर का रूप बनाकर उन्हें हँसाते थे। देवियाँ बालप्रभु को झूला झुलातीं और ऊँचे–ऊँचे पेंग भरातीं, परन्तु बालप्रभु डरते नहीं थे। कभी–कभी तो देव रत्नमयी विमान में बैठाकर बालप्रभु को गगन–विहार कराते थे। उनकी बाल क्रीड़ायें जीव हिंसा रहित निर्दोष थीं। वे देव–देवियाँ मात्र प्रभु के साथ मनोविनोद ही नहीं करते थे, साथ ही आत्मा की नई–नई बातें पूछकर प्रभु से आत्मज्ञान भी प्राप्त कर लेते थे। मल्लिकुमार जब आनन्दपूर्वक शांतचित्त से आत्मा की महिमा कहते, तब आठ–दस वर्ष के कितने ही बालक तथा बालिकायें भी आत्मज्ञान प्राप्त कर लेतीं थीं। इसप्रकार तीर्थंकर प्रकृति का उदय आने से पूर्व ही उन तीर्थंकर ने तीर्थंकरत्व का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उनका आत्मा ही स्वयं तीर्थरूप था फिर जड़प्रकृति की क्या आवश्यकता ? ज्ञानचेतना से भरपूर उनकी बालचेष्टायें देखकर तथा अमृत जैसी मीठी वाणी सुनकर माता–पिता एवं प्रजाजन अति प्रसन्न होते और तृप्ति को अनुभव करते थे।

अब मल्लिकुमार ने बचपन छोड़कर युवावस्था में प्रवेश किया। उनका शरीर वज्रसमान सुदृढ़, सर्वांगसुन्दर एवं उत्कृष्ट पुण्यरूप परमाणुओं से निर्मित था। उनकी आयु 55,000 वर्ष थी; उनके लिये इन्द्र स्वर्गलोक से उत्तमोत्तम भोगोपभोग की सामग्री भेजता था। ऐसे लोकोत्तर वैभव में भी राग–द्वेष से परे समभाव का वेदन उनके चल ही रहा था। उनका जीवन व्रत सम्पन्न था–'निर्विकल्प रस का पान करनेवाले भगवान क्या संसार में थे ? या संसार से अलिप्त थे ? उनके अंतर के उस गुप्त रहस्य को ज्ञानीजन ही जानते थे।

युवराज मल्लिकुमार कभी–कभी राजसभा को भी सुशोभित करते और वहाँ न्याय–नीति एवं धर्म की आश्चर्यजनक चर्चा करके सभाजनों को मुग्ध कर देते थे। अब तो, माता–पिता भी पुत्रवधू को देखने के लिये आतुर थे, परन्तु कुमार की उदासवृत्ति देखकर वे आग्रह नहीं कर सकते थे।

युवराज मल्लिकुमार अब सौ वर्ष के हो गये। अत्यन्त सुन्दर रूपवान होने पर भी वे मुक्तिसुन्दरी के सिवा किसी अन्य स्त्री के प्रति आकर्षित नहीं हुए थे; मोक्ष में ही उनका मन लगा हुआ था। एकबार राजा पृथ्वीपति की ओर से अपनी पुत्री रतिकुमारी के लिये उनकी मँगनी आयी। रतिकुमारी अति रूपवती एवं सर्वगुण–सम्पन्न होने से मल्लिकुमार के माता–पिता को वह कन्या पसन्द आ गई। तब मल्लिकुमार मौन रहे, किन्तु उनकी मन्द मुस्कान से माता–पिता उनकी सम्मति समझ गये और तुरन्त ही विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। मगसिर शुक्ला एकादशी उनका जन्मदिवस था और विवाह का भी वही दिन निश्चित् हुआ। मिथिलापुरी में सर्वत्र आनन्द छा गया और शोभा–सजावट होने लगी। राजभवन को दैवी अलंकारों से सजाया गया था। इतना ही नहीं, मित्रदेवों ने 'अगम्य हेतुपूर्वक' मिथिला के राजभवन के प्रांगण में एक नवीन अद्भुत दैवी रचना की थी मानो देवों का 'अपराजित विमान' ही हो !

मल्लिकुमार ने पूछा – अरे, यह सब सजावट किसलिये की गई है ? माता ने हँसकर कहा– बेटा यह सब तुम्हारे विवाह की तैयारी हो रही है ! पुत्रवधू का मुख देखकर हमें कितना आनन्द होगा; तुम्हारी बारात में जाने के लिये राजा–महाराजा भी आ गये हैं।

मल्लिकुमार क्षणभर स्तब्ध होकर माता की ओर देखते रहे फिर बोले–माँ ! मैं अपने आत्मा को संसार बंधन में नहीं बाँधना चाहता मुझे तो मुक्तिसुन्दरी की चाह है, इसलिए संसार की किसी स्त्री का मोह मुझे नहीं है; मुझे बहुत आत्मसाधना करना है।

माता ने कहा – बेटा, यह सब मैं जानती हूँ, परन्तु अभी तो

उम्र ही कितनी है ? तू अभी छोटा है, अभी तो राजसुख भोगकर हमें आनन्दित कर, फिर आत्मसाधना करना।

मल्लिकुमार कुछ बोले बिना गहरे विचार में डूब गये। बारात का प्रस्थान हो रहा था विशाल गजराज पर आरूढ़ अद्भुत अलंकारों

से सुसज्जित दूल्हा मल्लिकुमार की बारात ने विवाह हेतु प्रस्थान किया। जो भी मल्लिकुमार का वैभव देखता वह मुग्ध हो जाता था। बारात राजभवन के द्वार से बाहर निकल रही थी, तब नगरी की अद्भुत शोभा–सजावट, तथा अपराजित विमान जैसी रचना मल्लिकुमार को दृष्टिगोचर हुई। अचानक उनके ज्ञान में आभास हुआ – अरे, ऐसी अनुपम शोभा तो मैंने पूर्वकाल में भी देखी है। बस, उन्हें जातिस्मरण हुआ; अपराजित विमान की विभूति दृष्टिगोचर हुई। अरे, उस स्वर्गलोक की विभूति के समक्ष इस शोभा का क्या मूल्य ? मैं असंख्यात वर्ष तक स्वर्गलोक की उस विभूति में रह चुका हूँ; जिसका ममत्व था उसका भी अन्त में तो वियोग ही हुआ ! इस क्षणभंगुर शोभा के संयोग से आत्मा को क्या लेना–देना ? आत्मा की शोभा तो रत्नत्रय के वीतरागभाव से ही है। (फिर उन्हें दूसरे भव का

ज्ञान हुआ) अहा, उस भव में तो मैं वैश्रवण राजा था और मैंने रत्नत्रयव्रत किया था, पश्चात् जिनदीक्षा लेकर रत्नत्रय की आराधना की थी। वहाँ से अपराजित विमान में अहमिन्द्र होकर वहाँ के दैवी वैभवों का असख्यात वर्ष तक उपभोग किया, तथापि आत्मा को तृप्ति तो नहीं हुई। अब इन तुच्छ भोगों में आसक्त रहना मुझे शोभा नहीं देता।

प्रभु मल्लिकुमार का चित्त संसार से विरक्त हो गया। जन्म दिन, विवाह की तैयारी और वैराग्य– इन तीनों प्रसंगों का मानो संगम हुआ। बारात की साज–सज्जा के बदले अचानक जिनदीक्षा का वातावरण निर्मित हो गया। वैरागी कुमार चिन्तवन करने लगे– अरे, यह सांसारिक भोगोपभोग जीव को बन्धन हैं। जिन्हें मात्र मोक्ष की अभिलाषा है, ऐसे मुमुक्षु को इस संसार के बंधनों में बँधना योग्य नहीं है। संसार के बंधनों में स्त्री का बंधन मुख्य है। विवाह कार्य मुमुक्षु के लिये लज्जास्पद और मोक्षसाधना में विघ्नकर्ता है। मैं विवाह नहीं करूँगा, मैं तो आज ही राजभवन छोड़कर वन में जाऊँगा और जिनदीक्षा लेकर परमात्म पद की साधना करूँगा।

इसप्रकार परम वैराग्यपूर्वक मल्लिकुमार ने अपने जिनदीक्षा सम्बन्धी निर्णय की घोषणा की और वैराग्य में तत्पर हुए। माता–पिता एवं प्रजाजन तो यह सुनकर स्तब्ध रह गये; चारों ओर विषाद छा गया। क्या कहा जाय कुछ सूझता नहीं था किसकी शक्ति थी जो वैरागी सिंह को संसार के पिंजरे में बन्दी बनने को कहे ! बारात में सम्मिलित होने आये राजा–महाराजाओं ने विचार किया कि अरे, इस संसार की बारात को तोड़कर प्रभु अब मोक्ष की बारात जोड़ रहे हैं, तो उसमें हम उनके साथ ही रहेंगे। भोग में साथ थे तो योग में भी उनके साथ ही रहेंगे और मोक्ष साधेंगे। इसप्रकार महाराज मल्लिराज के साथ तीन सौ राजा भी दीक्षा लेने को तैयार हुए। 'विवाह के समय वैराग्य' यह तीर्थंकर मल्लिनाथ के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण आश्चर्यजनक घटना हुई, तब स्वर्गलोक में भी खलबली मच गई।

राजभवन में भी शोक छा गया। माता प्रजावती पुत्रविरह का यह दृश्य नहीं देख सकीं, वे एकदम शोकविह्वल होकर रुदन करने लगीं। पिताश्री कुम्भराजा भी क्षणभर शून्यमनस्क हो गये। 'बेटा, तू जिनदीक्षा न ले'–ऐसा तो कैसे कहते ? और 'बेटा तू दीक्षा ग्रहण कर ले'– ऐसा विदा–वचन भी कैसे निकलता ? दोनों जानते थे कि

वैरागीपुत्र अब दीक्षा लेकर ही रहेगा, उसे कोई रोक नहीं सकता; परन्तु पुत्रमोह के कारण ऐसे कल्याण के अवसर पर भी उन्हें क्षणभर शोक होने लगा कि अरे मोह ! तू कैसा दृष्ट है ! दृष्टि समक्ष रखे हुए भरपूर आनन्द को भी भोगने नहीं देता !

प्रभु मल्लिकुमार ने अति कोमल वैराग्य सम्बोधन द्वारा उनका मोह दूर कराते हुए कहा– हे माता ! हे पिता ! यह मोह छोड़ो। मैं तुम्हारा पुत्र बनकर रहूँ, उसके बदले में परमात्मा बनकर तुम्हें दर्शन दूँ – यह क्या आपको परम इष्ट नहीं है ? इस समय मुझे पुत्ररूप में देखकर आपको जो आनन्द होता है, उसकी अपेक्षा मुझे परमात्मारूप में देखकर विशेष आनन्द होगा। और हे मातुरी, हे पिताश्री ! आपको भी अन्त में तो संसार मोह छोड़कर वैराग्य पथ पर

आना है; आप तो तत्त्व के ज्ञाता हो, इसलिए शोक संताप छोड़ो और जिस परमात्मपद की साधना हेतु मैं जा रहा हूँ उसका अनुमोदन करके आप भी उसकी भावना भाओ !

पिता बोले – देव ! आपकी बात सत्य है; आप तीर्थंकर होने के लिये अवतरित हुए हो, आपको संसारिक बन्धनों में नहीं बाँधा जा सकता। आप तो जगत को भी मोक्षमार्ग बतलाकर बंधनमुक्त करनेवाले हो। बेटा ! अब हमारा मोह दूर हो गया; अब हम तुम्हें मात्र पुत्ररूप में नहीं किन्तु परमात्मारूप में देख रहे हैं ! आप जब केवलज्ञान प्राप्त करके तीर्थंकर होंगे, तब हम भी आपके समवसरण में आकर व्रत–महाव्रत अंगीकार करके आत्मा का कल्याण करेंगे। माताजी तो कुछ बोल नहीं सकीं, मौन रहकर प्रभु की ओर देखती रह गईं !

हे माताजी ! मैं आत्मसाधना में आलस्य नहीं करूँगा, कुछ ही दिनों में केवलज्ञान प्रकट करके परमात्मस्वरूप में आपको दर्शन दूँगा। ऐसा कहकर वे वैरागीकुमार उन्हें नमन करके वीतरागमार्ग पर चल दिये। माता–पिता वैराग्यभावपूर्वक अश्रुभीगी आँखों से उन परमात्मा को देख रहे थे।

उसीसमय लौकान्तिक देवों ने आकर प्रभु को नमस्कार किया और स्तुति–गान करने लगे – हे देव ! आप कुमारावस्था में दीक्षा ले रहे हैं, वह उत्तम कार्य है। इस चौबीसी में कुमार अवस्था में दीक्षा ग्रहण करनेवाले पाँच तीर्थंकरों में आप दूसरे हैं। पहले वासुपूज्य तीर्थंकर ने भी बालब्रह्मचारी रहकर दीक्षा ली थी, उनके पश्चात् आप विवाह के समय वैरागी होकर बालब्रह्मचारीरूप से दीक्षा लेने को तत्पर हुए हो और भविष्य में अन्तिम तीनों तीर्थंकर भी बालब्रह्मचारी रहकर दीक्षा लेंगे।

**'श्री वासुपूज्य-मल्लि-नूक, पारस-वीर अति।**
**नमूँ मन-वच-तन धरि प्रेम, पाँचों बालयति।।'**

हे देव ! कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि तीर्थंकर को वैराग्य जागृत होने पर लौकान्तिक देव आकर उन्हें सम्बोधते हैं और उनके

वैराग्य को दृढ़ करते हैं। परन्तु हे देव ! यह बात कल्पनामात्र है; हम आपको सम्बोधने वाले कौन ? आप स्वयंबुद्ध हैं परम वैरागी हैं और हम सबको बोध देनेवाले हैं। अखण्ड तेज से स्वयं प्रकाशमान सूर्य को क्या दीपक की आवश्यकता होती है ? हे नाथ ! हम आपको सम्बोधने के लिये नहीं किन्तु मात्र भक्तिवश अपने वैराग्य की दृढ़ता हेतु आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। 'हे देव ! आप जैसी रत्नत्रयविभूति हमें भी प्राप्त हो।' ऐसी भावना करके वे देव अपने निवास स्थान को चले गये। प्रभु का चित्त अपने आत्मचिन्तन में लगा हुआ था, वे बारह प्रकार की वैराग्य–भावनाओं का चिन्तन कर रहे थे –

(1) चेतनरूप अपना स्वधर्म ही सदा मेरे साथ एकत्वरूप है। शेष सब संयोग 'अध्रुव' हैं वे कोई मेरे साथ शाश्वत नहीं रहेंगे।

(2) कोई भी स्नेहीजन या धन–वैभव मुझे शान्ति देनेवाले या दुःख से बचानेवाले नहीं है; इसलिए वे सब मुझे 'अशरण' हैं। रत्नत्रय धर्मरूप मेरा आत्मा ही मुझे शरण है।

(3) आत्मस्वरूप को भूलकर, मिथ्यात्व एवं कषायवश जीवन ने संसार में भव धारण कर–करके अनन्तबार अनन्त महान दुःख भोगे हैं। उस संसार दुःख से छूटने के लिये वीतराग भाव ही कर्त्तव्य है।

(4) संसार में या मोक्ष में सर्वत्र जीव 'अकेला' है; संसार में पुण्य–पाप उसके साथ हैं और मोक्ष में जाने के लिये सम्यक्त्वादि उसके साथी हैं, अन्य कोई उसका साथी नहीं है।

(5) अरे, रागादि विभाव भी मेरे चिदानन्द स्वभाव से 'अन्य' हैं, तब शरीर और सगे–सम्बन्धियों की बात ही कहाँ रही ? उन सबसे मैं पृथक् हूँ।

(6) इस जीव को शरीर की मलिनता की अपेक्षा विषय–कषाय के मलिनभाव अधिक 'अशुचि' एवं दुःखकारी हैं; मैं अपने पवित्र ज्ञान स्वरूप में मलिनभावों को प्रविष्ट नहीं होने

दूँगा। {कौन भा रहा है यह वैराग्य भावनायें ? प्रभु–मल्लिनाथ भा रहे हैं।}

(7) अरे, मिथ्यात्वादि भावों की तो क्या बात ? सूक्ष्म शुभरागरूप छिद्र भी जीव की नौका को भवसमुद्र से पार नहीं होने देता, तथा कर्मास्रव द्वारा भवभ्रमण कराता है; इसलिए वे रागादि 'आस्रव' भाव सर्वथा रोकने योग्य हैं।

(8) उन रागादि आस्रवभावों को सर्वथा रोकने और जीव की नौका को भव से पार करने के लिये, आत्मा को शुद्धभावरूप 'संवर' ही उत्तम साधन है।

(9) पूर्वकाल में बाँधें हुए दीर्घ स्थितिवाले कर्मों को भी मैं आत्मशुद्धि की वृद्धि द्वारा शीघ्र तोड़कर आत्मा में उनकी 'निर्जरा' कर दूँगा।

(10) आत्मस्वरूप में एकाग्र हुआ शुद्ध उपयोग मोह या क्षोभ रहित है; वीतरागी समभावरूप है, वही मेरा 'धर्म' है। उसके द्वारा मैं अपने आत्मा को संसार से निकालकर सिद्धपद में स्थापित करूँगा।

(11) अपने अनन्त गुण–पर्यायों से भरपूर मेरा चैतन्य 'लोक' मुझ में परिपूर्ण है। मैं उसी का अन्तर्मुख होकर अवलोकन करता हूँ, उससे बाहर अनेक विचित्रता से भरपूर 'लोक' में कुछ भी मेरा नहीं है।

(12) नरक, तिर्यंचगति के अति घोर दुःख तथा देव, मनुष्य की विभूतियाँ भी जीव अनन्तबार प्राप्त कर चुका है, वह कुछ भी दुर्लभ या अप्राप्त नहीं है। जीव को अपने स्वरूप की अनुभूति रूप बोधि' ही महान दुर्लभ है, और वही जीव को परम सुखदायी है। यह उसकी प्राप्ति का अवसर है; इसलिए अखण्ड बोधि की आराधना ही कर्त्तव्य है; उसमें आलस्य करना योग्य नहीं है। मुमुक्षु बुद्धिमान जीवों को काल का एक कण भी धर्म के बिना नहीं बिताना चाहिये। इसप्रकार उत्तम वैराग्य भावनाओं का चिन्तवन करते हुए

मल्लिकुमार ने जिन दीक्षा हेतु वनगमन का निश्चय किया और उसी समय इन्द्रादि देव भी दीक्षाकल्याणक मनाने हेतु 'जयंती' नामक सुन्दर शिबिका लेकर मिथिलापुर आ पहुँचे। कुमार शिबिका में आरूढ़ हुए।

**मल्लिनाथ की बारात चली मुक्तिसुन्दरी वरने**

अपने राजकुमार को युवावस्था में राजपाट छोड़कर वनगमन करता देखकर प्रजाजन वैराग्य से गद्‌गद होकर उनका अभिनन्दन कर रहे थे अहा, देखो यह राजकुमार ! विवाह के अवसर पर ही राजभोगों को छोड़कर साधु होने के लिये वन में जा रहे हैं। लोग तो भोगोपभोग के पीछे दौड़ते हैं, भोग–भोगकर थक जायें, तथापि उन्हें नहीं छोड़ते उससे विपरीत यह वैरागी राजकुमार तो उन्हें प्राप्त हुए दिव्यभोगों को भी भोगे बिना त्याग रहे हैं। धन्य है इनका अवतार ! धन्य है आत्मज्ञान ! और धन्य हैं वैराग्य ! कुछ ही समय पूर्व जो राजा–महाराजा और हाथी घोड़ा आदि वैभव मल्लिकुमार की बारात में जाने को ठाट– बाट से तैयार हुए थे, वे सब अब प्रभु के साथ

मोक्ष की बारात में जाने को तैयार हुए। भोगमार्ग के सहचारी अब योगमार्ग के सहचर बने ! अनेक हाथी घोड़े आदि प्राणी भी कुमार के पीछे–पीछे श्वेतवन में चले। बारात के समय जिस मुख्य गजराज पर मल्लिकुमार आरूढ़ थे, वह गज भी उन्हें संसार से विरक्त मुनिदशा में देखकर आश्चर्यपूर्वक अत्यन्त भावुकता से उनके निकट ही बैठा रहा; वह प्रभु की परमशान्त मुद्रा को एकटक देख रहा था, मानो स्वयं आँखें मूँदकर उस ध्यान का अभ्यास कर रहा हो ! उन हाथी आदि को भी वन का वह शान्तिपूर्ण वातावरण और प्रभु का सान्निध्य छोड़कर राजभवन में लौटने का मन नहीं हुआ, इसलिए वे भी वन में ही रह गये और प्रभु के सम्पर्क में रहकर आत्महित साधने लगे। धन्य है सन्तों का सान्निध्य !

श्वेतवन के उपशान्त वातावरण में जिनदीक्षा का एक महामंगल उत्सव प्रारम्भ हुआ। जन्म की भाँति दीक्षाकल्याणक के अवसर पर भी देव एक साथ साढ़े बारह करोड़ बाजे बजा रहे थे, परन्तु उनमें से इस समय वैराग्य के परम शान्तस्वर निकलते थे। अति रमणीय एवं शान्त ऐसे श्वेतवन में आकर प्रभु मल्लिनाथ ने क्षणभर आत्मचिन्तन किया; जनसमूह की ओर परम शांत दृष्टि से देखा। प्रभु की दृष्टि पाकर सब पावन हो गये, मानो उस समभावभरी शांतदृष्टि द्वारा प्रभु ने सबसे विदा ली; मुकुट और हार उतार दिये, मस्तक के कोमल केशों का लोंच करके शरीर के प्रति परम उपेक्षावृत्ति धारण कर ली। 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः'–ऐसे उच्चारणपूर्वक सिद्धों को वंदन करके पंचमहा व्रतधारी दिगम्बर मुनि हो गये और आत्मध्यान में उपयोग को एकाग्र किया। उसी क्षण मुनिराज मल्लिनाथ के निर्विकल्प शुद्धोपयोग दशा प्रकट हुई–स्वयं ही 'धर्म' हो गये, क्योंकि शुद्धोपयोगरूप हुआ आत्मा ही श्रमण है, वही मोक्षमार्ग है, वही केवलज्ञान है और वही सिद्ध है। तीर्थंकर मुनिराज की आत्मा आज (मगसिर शुक्ला एकादशी के दिन) रत्नत्रयरूप परिणमित होकर श्रमण हुए, साक्षात् मोक्षमार्गरूप परिणमित हुए।

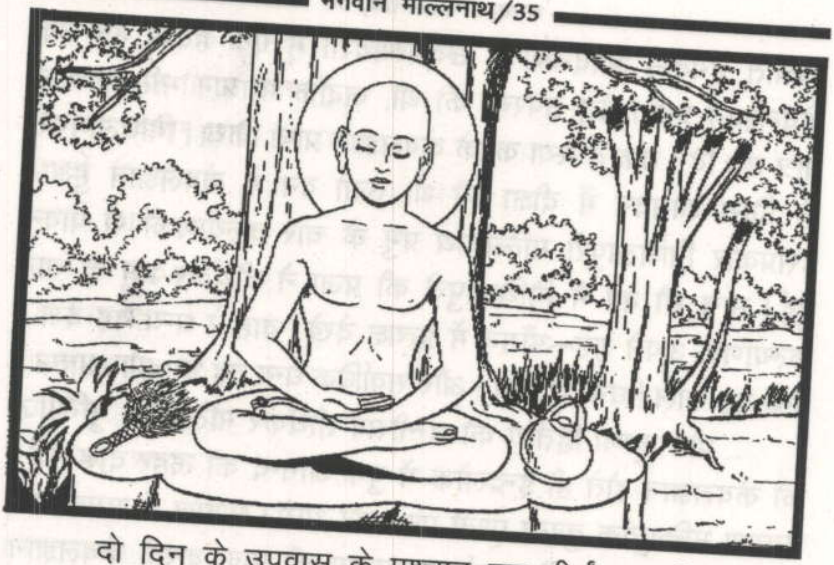

दो दिन के उपवास के पश्चात् उन तीर्थंकर मुनिराज को मिथिलापुरी में नंदिषेणराजा ने नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान देकर पारणा कराया। तीर्थंकर मुनिराज जैसे सर्वोत्तम सुपात्र को आहारदान का प्रसंग होने से देवों ने भी आनन्दित होकर जय–जयकार करते हुए आकाश से पुष्पों तथा रत्नों की वर्षा की। मोक्षगामी मुनि के कर–भाजन में आहार देनेवाले वे महात्मा स्वयं भी मोक्ष के भाजन बन गये, क्योंकि ऐसा नियम है कि तीर्थंकर को मुनिदशा में प्रथम पारणा करानेवाला जीव उसी भव में अथवा तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त करता है।

प्रभु मल्लिनाथ की आत्मसाधना आश्चर्यजनक थी। मोहराजा के सेनापति ऐसे दुष्ट कामरूपी महाशत्रु का तो उन्होंने पहले ही घात कर दिया था, इसलिए शेष मोह को जीतने में उन्हें अधिक देर नहीं लगी। मुनिदशा में छद्मस्थरूप से वे मात्र दस दिन ही रहे शुद्धात्मा के ध्यान की प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित करके उसमें घातिकर्मों के ईंधन को इतनी शीघ्रता से दहन कर दिया कि दस दिन में ही केवलज्ञान प्रकट करके परमात्मा बन गये। सर्व तीर्थंकरों में छद्मस्थरूप से रहने का न्यूनतम काल मल्लिनाथ मुनिराज का था। मुनि होने के

पश्चात् भगवान आदिनाथ ने छद्मस्थदशा में एक हजार वर्ष तक केवलज्ञान प्राप्ति हेतु तपस्या की थी, जबकि भगवान मल्लिनाथ ने मात्र छह दिन तक तपस्या करके केवलज्ञान प्राप्त किया। मिथिलानगरी के जिस श्वेतवन में दीक्षा ली थी उसी वन में केवलज्ञान हुआ। इसप्रकार मिथिलापुरी मल्लिनाथ प्रभु के चार कल्याणकों से पावन हुई। मात्र सौ वर्ष में मिथिलापुरी की प्रजा ने तीर्थंकर प्रभु के चार कल्याणक अपने गृह–आँगन में प्रत्यक्ष देखे। वाह रे धन्य वह देश ! धन्य वह काल ! धन्य वे जीव ! और सर्वाधिक धन्य वह भगवान–आत्मा !

पौष कृष्णा द्वितीय को उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ मुनिराज को केवलज्ञान होते ही इन्द्रलोक में पुनः आनन्द की लहर दौड़ गई। देवगण भक्तिपूर्वक तुरन्त पृथ्वी पर उतर आये। क्षणभर में समवसरण की भव्य रचना की और सर्वज्ञ परमात्मा की पूजा करके केवलज्ञान का महोत्सव मनाया। उस समवसरण की अद्‌भुत शोभा का वर्णन शब्दों द्वारा नहीं हो सकता, प्रत्यक्ष देखने से ही उसकी दिव्यता ज्ञात होती है। अहा, जिसके बीचों बीच परमात्मा स्वयं विराजते हों, उस स्थान की शोभा जगत में सर्वोत्कृष्ट हो उसमें आश्चर्य ही क्या ! अरे, एक छोटे–से साधक के हृदय में जहाँ 'परमात्मा' विराजते हों उसकी शोभा भी क्या तीन लोक के वैभव से श्रेष्ठ नहीं हो जाती ? उस समवसरण में मात्र एक (तीर्थंकर) परमात्मा ही नहीं, किन्तु दूसरे दो हजार दो सौ सर्वज्ञ परमात्मा भी एक साथ विराजते थे। अहा, उस आश्चर्यकारी धर्मसभा का क्या कहना !

उस धर्मसभा में जिनराज के दर्शन हेतु जीवों की टोलियाँ उमड़ पड़ीं। उनकी प्रसन्नता का पार नहीं था। तीर्थंकर प्रभु के समवसरण की शोभा सज्जनों को महा–आनन्द देनेवाली थी। उसमें प्रवेश करते ही भव्यात्माओं को ऐसा अनुभव होता था, मानो हम अपने ही मोक्ष मण्डप में आ गये ! चारों ओर बैठकर धर्मश्रवण एवं आत्मसाधना करनेवाले गणधर देवों से लेकर देव, मनुष्य तिर्यंचों की बारह सभाओं में मोक्षगामी भव्यजीवों का मंगल मेला वहाँ भरा हुआ

था। सर्वज्ञ परमात्मा भगवान मल्लिनाथ चारों दिशाओं के जीवों को अपने सन्मुख देखते थे। उनके समक्ष देखनेवाले जीव उनके देहदर्पण में अपने सात भव देख सकते थे, परन्तु उनके आत्मदर्पण में दृष्टि डालनेवाला जीव अपने शुद्ध आत्मस्वरूप के भी दर्शन कर लेता था। अनेक जीव तो समवसरण में गये सो गये, वे फिर बाहर नहीं आये। समवसरण में ही प्रभुसन्मुख आत्मज्ञान प्राप्त करके ऐसी आत्मसाधना की कि वहीं मुनि होकर, केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष प्राप्त किया और सिद्धपुरी में निवास करने लगे, समवसरण में भीतर गये, परन्तु बाहर नहीं आये। समवसरण में किसी जीव का मरण नहीं होता, किन्तु मोक्ष होता है। मोक्ष होना वह कोई मरण नहीं है, वह तो शाश्वत जीवन है।

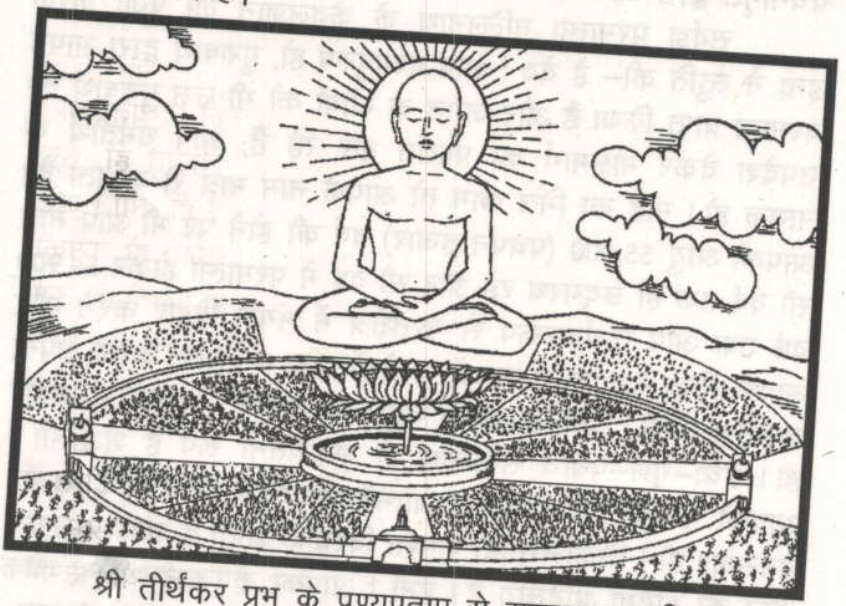

श्री तीर्थंकर प्रभु के पुण्यप्रताप से समवसरण भूमि का एक आश्चर्य यह है कि उसकी भूमि के क्षेत्रफल की अपेक्षा अनेक गुनी संख्या के देव, मनुष्य, तिर्यंचों का समावेश हो जाता है। समवसरण में किसी को रोग या पीड़ा नहीं होती, क्षुधा–तृषा नहीं लगती, वैर–विरोध नहीं होता; –समवसरण में प्रवेश करते ही वह सब दूर

हो जाता है और मुमुक्षु जीवों का चित्त परम शान्तिपूर्वक उन साक्षात् परमात्मा के दर्शन तथा धर्म श्रवण में लग जाता है फिर अंतर की गहराई में उतरकर वे भव्यजीव, प्रभु द्वारा कहे हुए आत्मस्वरूप का अवलोकन करने में उपयोग लगाते हैं और निजवैभव को निहारकर निहाल हो जाते हैं। प्रभु मल्लिनाथ के समवसरण में दो हजार दो सौ केवली परमात्मा गगन में विराजते थे; तदुपरान्त विशाखसेन आदि अट्ठाईस गणधर थे; विधि लब्धिवान चालीस हजार मुनिवर एवं बंधुषेणा आदि पचपन हजार आर्यिकायें थीं; एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें आत्मचिन्तन करतीं थीं। तिर्यंचों की संख्या का तो कोई पार नहीं था। सब जिनभक्ति में तत्पर थे और वीतराग के वचनामृत द्वारा शांतरस का पान करते थे।

सर्वज्ञ परमात्मा मल्लिनाथ के केवलज्ञान की पूजा करके इन्द्र ने स्तुति की– हे देव ! आप परमपुरुष हो, पुरुषार्थ द्वारा आपने परमपद प्राप्त किया है और जगत के जीवों को भी उस पुरुषार्थ का उपदेश देकर मोक्षमार्ग का प्रवर्तन कर रहे हैं; आप धर्मतीर्थ के नायक हो। मोह का मित्र काम तो आपके नाम मात्र से काँपता है। आपकी आयु 55,000 (पचपन हजार) वर्ष की होने पर भी आप मात्र सौ वर्ष तक ही छद्मस्थ रहे और सौ वर्ष में परमात्मा होकर 54,900 वर्ष तक आप तीर्थंकररूप से भरतक्षेत्र में मंगल विहार करेंगे और आपके दिव्य उपदेश से लाखों–करोड़ों जीव धर्म प्राप्त करके अपना कल्याण करेंगे। अहा, हे अनन्त चतुष्टयधारी देव ! आपको नमस्कार हो। द्रव्य–गुण–पर्याय सर्वप्रकार से शुद्धचेतना रूप हे शुद्धात्मा ! आपको नमस्कार हो ! अनन्त आत्मवैभवधारी हे परमेश्वर ! आपको नमस्कार हो ! त्रिकालसहित समस्त विश्व के ज्ञाता हे सर्वज्ञ ! आपके ज्ञान की महिमा अद्वितीय है। प्रभो ! आपका केवलज्ञान तीनों लोक के लिये मंगलरूप है।–इसप्रकार स्तुति द्वारा इन्द्र ने प्रभु के केवलज्ञान–कल्याणक का महामंगल महोत्सव किया।

अपने राजकुमार को मात्र छह दिन में ही परमात्मा के रूप में देखकर मिथिलापुर के प्रजाजनों को अपूर्व आनन्द हो रहा था इन

उन्नीसवें तीर्थंकर के चार कल्याणक अपनी नगरी में मनाये गये और अभी इक्कीसवें तीर्थंकर के भी चार कल्याणक अपनी नगरी में मनाये जायेंगे अहा, अपनी यह नगरी आठ कल्याणकों द्वारा धन्य होगी ! प्रभु

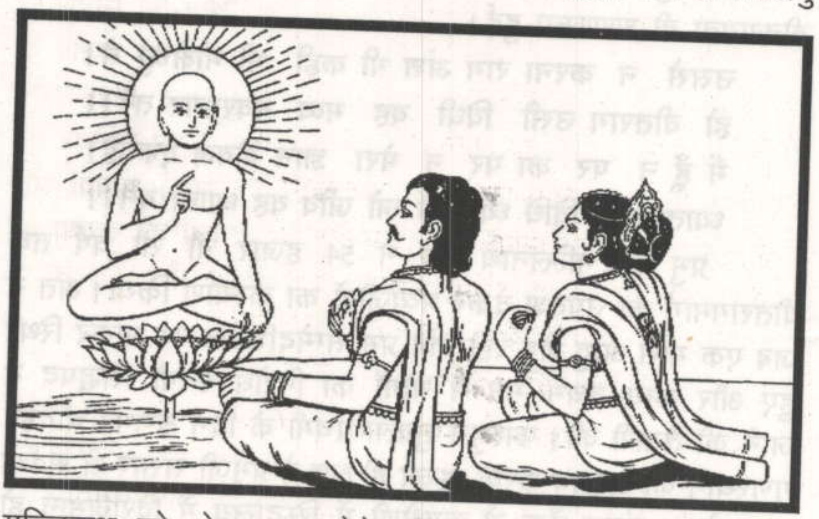

मल्लिनाथ को केवलज्ञान होने की बात सुनते ही पिताश्री कुंभ महाराजा और माता श्री प्रजावती आश्चर्यमुग्ध होकर तत्काल समवसरण में आ पहुँचे और अपने पुत्र को परमात्मा के रूप में देखकर कल्पनातीत हर्षानन्द को प्राप्त हुए–'अहा, हमारा पुत्र प्रभु बनकर हमें दर्शन देने आया है !' उन्हें तो कल्पना भी नहीं थी कि मात्र छह दिन में हम अपने लाड़ले पुत्र को अपनी नगरी में ही भगवान रूप में देखेंगे ! छह दिन पूर्व जिस पुत्र के वियोग से शोकसंतप्त हो रहे थे, उसी को आज दिव्यविभूतिसहित परमात्मारूप में देखकर वे आनन्दविभोर हो गये, उनका शोक–संताप एकदम मिट गया और वह आनन्दातिरेक भी अधिक समय तक नहीं टिका; क्योंकि प्रभु की वाणी में चैतन्य के वीतराग स्वरूप की अद्‌भुत महिमा सुनते ही उन्होंने हर्ष–शोक से पार आत्मानुभव के लिये उपयोग को अन्तर्मुख किया। क्षणभर शुद्धोपयोगी होकर, पश्चात् विशुद्ध परिणाम की वृद्धि द्वारा चारित्रदशा ग्रहण करके उन्होंने अपना आत्मकल्याण किया। पिता कुम्भराजा तो उसी भव में मोक्ष को प्राप्त हुए और माता

प्रजावती एकावतारी होकर स्वर्ग सिधारीं। अहा, तीर्थंकर समान पुत्र का संयोग, उसका भी माता–पिता को वियोग हुआ और अंत में तो उस पिता–पुत्र के भी सम्बन्ध का मोह तोड़कर आत्मा की अपनी वीतरागता ही शरणरूप हुई।

**उससे न करना राग अंश भी कहीं भी मोक्षेच्छु ने।**
**हो वीतराग उसी विधी वह भव्य भवसागर तरे।।**
**मैं हूँ न पर का पर न मेरा ज्ञान केवल एक है।**
**ध्याता इसी विधि ध्यान में जो जीव वह ध्याता बने।।**

प्रभु श्री मल्लिनाथ देव ने 54 हजार नौ सौ वर्ष तक वीतरागमार्ग का उपदेश देकर भव्यजीवों का कल्याण किया। अंत में जब एक मास आयु शेष रही, तब प्रभु सम्मेदशिखर पर आकर स्थिर हुए और काय–वचन–मन में योगों का निरोध करके सिद्धपद में जाने की तैयारी की। फाल्गुन शुक्ला पंचमी के दिन क्षणभर चौदहवें गुणस्थान का अनुभव करके, दूसरे ही क्षण वे प्रभुजी संसार से सर्वथा मुक्त होकर संबल टूँक से समश्रेणी में सिद्धालय में विराजमान हो गये। देवों ने पंचम कल्याणक का महोत्सव किया; मोक्ष के बाजे बजाये और प्रभु की पूजा की :–

**मल्लिनाथ जिनराज की संबल टूँक है जेह।**
**मन-वच-तन कर पूज हूँ शिखरसम्मेद यजेह।।**

पहले जो विदेहक्षेत्र में वैश्रवण राजा थे; वहाँ रत्नत्रयधर्म की महापूजा तथा उपासना करके जिन्होंने तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया, पश्चात् जो अपराजित विमान में अहमिन्द्र हुए और अन्त में कुंभराजा के पुत्र रूप में अवतरित होकर, विवाह के समय ही वैराग्य प्राप्त करके, केवलज्ञान प्रकट करके भरतक्षेत्र के 19वें तीर्थंकर हुए। उन परमपुरुष भगवान मल्लिनाथ यह मंगल–जीवन भव्यजीवों को मोक्षपुरुषार्थ को प्रेरक हो। इस मल्लिनाथ पुराण द्वारा उनका भाव–स्तवन हमारे रत्नत्रय की विशुद्धि का कारण हो।

**{श्री मल्लिनाथ जिनराज का मंगल पुराण पूर्ण हुआ।}**